

स च प्राह मुनिः श्रीमद्वर्द्धमानो गुरुर्मम। इत्युक्ते पाण्डुरं तस्य शरीरं कृष्णतामितम् ॥२०॥
 ततो व्याघुटितः श्रीमाञ्छ्रेणिको गौतमं मुनिम्। तच्छरीरस्य कृष्णत्वकारणं पृष्टवानृपः ॥२१॥
 तेनोक्तं ज्ञानिना भूप स्वगुरोर्निह्वाद्भुवम्। तत्कायः कृष्णवर्णोभूतत्समाकर्ण्य धीमता ॥२२॥
 शीघ्रं पश्चात्समागत्य तत्समीपं महीभुजा। श्रेणिकेन शुभैर्वाक्यैर्भक्त्या सम्बोधितः स च ॥२३॥
 ततोऽसौ श्वेतसंदीवो मुनिः कृत्वा स्वनिन्दनम्। शुक्लध्यानेन संहत्वा घातिकर्मचतुष्टयम् ॥२४॥
 केवलज्ञानमुत्पाद्य लोकालोकप्रकाशकम्। पूजितस्त्रिजगद्भव्यैः संप्राप्तो मोक्षमक्षयम् ॥२५॥
 ततो भव्यैर्न कर्तव्यो निह्वः स्वगुरोः कदा। समाराध्यो गुरुर्यस्मात्स्वर्गमोक्षसुखप्रदः ॥२६॥
 स श्रीकेवललोचनोत्तितचतुरो भव्यौघसम्बोधको देवेन्द्रादिनरेन्द्रखेचरशतैर्भक्त्या सदाभ्यर्चितः।
 व्यक्तानन्तचतुष्टयो गुणनिधिः श्रीश्वेतसंदीववाक् कुर्यान्मे भवशान्तिमक्षयसुखं शीघ्रं जिनः शर्मदम् ॥२७॥

इति कथाकोशे निह्वाख्यानं समाप्तम्।

१३. व्यञ्जनहीनाख्यानम्

नत्वा श्रीमज्जिनेन्द्रस्य पादपद्मद्वयं मुदा। वक्ष्ये व्यञ्जनहीनस्य कथां सम्बोधहेतवे ॥१॥
 देशे मगधसंज्ञेऽभूत्पुरे राजगृहे सुधीः। वीरसेनो महाराजो वीरसेना प्रिया तयोः ॥२॥

योग्य ऐसी बातें नहीं हैं ऐसी बातों से पाप बन्ध होता है इसलिए आगे से आप कभी ऐसा न करेंगे, यह मेरी आपसे प्रार्थना है। श्रेणिक की इस शिक्षा का श्वेतसंदीव मुनि के चित्त पर बड़ा गहरा असर पड़ा। वे अपनी भूल पर बहुत पछताये। इस आलोचना से उनके परिणाम बहुत उन्नत हुए। यहाँ तक कि उसी समय शुक्लध्यान द्वारा कर्मों का नाश कर लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया। वे सारे संसार द्वारा अब पूजे जाने लगे। अन्त में अघातिया कर्मों को नष्ट कर उन्होंने मोक्ष का अनन्त सुख लाभ किया। श्वेतसंदीव मुनि के इस वृत्तान्त से भव्यजनों को शिक्षा लेनी चाहिए कि वे अपने गुरु आदि का निह्व न करें क्योंकि गुरु स्वर्ग-मोक्ष के देने वाले हैं, इसलिए सेवा करने योग्य हैं ॥१८-२६॥

वे श्रीश्वेतसंदीव मुनि मेरे बढ़ते हुए संसार की-भव-भ्रमण की शान्ति कर-मेरा संसार का भटकना मिटाकर मुझे कभी नाश न होने वाला और अन्त मोक्ष-सुख दें, जो केवलज्ञानरूपी अपूर्व नेत्र के धारक हैं, भव्यजनों को हित की ओर लगाने वाले हैं, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा पूज्य हैं और अनन्तचतुष्टय-अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य से युक्त हैं तथा और भी अनन्त गुणों के समुद्र हैं ॥२७॥

१३. अक्षरहीन अर्थ की कथा

जिन भगवान् के चरणों को नमस्कार कर अक्षरहीन अर्थ की कथा लिखी जाती है। मगधदेश की राजधानी राजगृह के राजा जब वीरसेन थे, उसी समय की यह कथा है। वीरसेन की रानी का नाम वीरसेना था। इनके एक पुत्र हुआ, उसका नाम रखा गया सिंह। सिंह को पढ़ाने के लिए वीरसेन

सिंहनामा सुतो जातस्तस्योपाध्यायकोभवत्। सोमशर्मा सुधीः सर्वशास्त्रव्याख्याविचक्षणः ॥३॥
 सुरम्यविषये ख्याते पोदनादिपुरे तथा। राजा सिंहस्थस्तस्योपरि प्राप्तेन वैरिणा ॥४॥
 वीरसेनेन भूभर्ता पोदनाख्यपुरात्तदा। सिंहोध्यापयितव्योसौ सुलेखः प्रेषितो गृहम् ॥५॥
 सिंहोध्यापयितव्यः स शब्दस्यैव विचारणे। 'ध्वै' स्मृतीति प्रचिन्ताया-मस्यधातोः प्रयोगकम् ॥६॥
 ज्ञात्वा कारयितव्यस्तु चिन्तां राज्यादिके सुतः। सिंहो पाठयितव्यो न जगौ चेति कुवाचकः ॥७॥
 इत्याकारे प्रलुप्ते च व्याख्याते भ्रान्तितस्तदा। पाठितो नैव सिंहोसौ हा कष्टं मूढचेष्टितम् ॥८॥
 आगतेन ततो राज्ञा वीरसेनेन धीमता। ज्ञात्वा तत्कारणं कष्टं वाचको दण्डितः क्रुधा ॥९॥
 तस्मादेवं न कर्त्तव्यः प्रमादः साधुभिः क्वचित्। येन कार्यस्य हानिः स्यादर्थसन्दोहनाशिनी ॥१०॥
 यथौषधंहीनगुणत्वमाश्रितंनिहन्ति नैवात्र शरीरवेदनाम्। तथाक्षरहीनगुणाश्रितं श्रुतंहितं न तत्तच्च शुभं सुधीः पठेत् ॥११॥

इति कथाकोशे व्यंजनहीनाख्यानं समाप्तम्।

महाराज ने सोमशर्मा ब्राह्मण को रखा। सोमशर्मा सब विषयों का अच्छा विद्वान् था ॥१-३॥

पोदनपुर के राजा सिंहस्थ के साथ वीरसेन की बहुत दिनों से शत्रुता चली आती थी। सो मौका पाकर वीरसेन ने उस पर चढ़ाई कर दी। वहाँ से वीरसेन ने अपने यहाँ एक राज्य-व्यवस्था की बाबत पत्र लिखा और समाचारों के सिवा पत्र में वीरसेन ने एक यह भी समाचार लिख दिया था कि राजकुमार सिंह के पठन-पाठन की व्यवस्था अच्छी तरह करना। इसके लिए उन्होंने यह वाक्य लिखा था कि “सिंहो ध्यापयितव्यः”। जब यह पत्र पहुँचा तो इसे एक अर्धदग्ध ने बाँचकर सोचा—‘ध्वै’ धातु का अर्थ है स्मृति या चिन्ता करना इसलिए अर्थ हुआ कि ‘राजकुमार पर अब राज्य-चिन्ता का भार डाला जाये’ उसे अब पढ़ाना उचित नहीं। बात यह थी कि उक्त वाक्य के पृथक् पद करने से—“सिंहः अध्यापयितव्यः” ऐसे पद होते हैं और इनका अर्थ होता है—सिंह को पढ़ाना, पर उस बाँचने वाले अर्धदग्ध ने इस वाक्य के—“सिंहः ध्यापयितव्य” ऐसे पद समझकर इसके सन्धिस्थ अकार पर ध्यान न दिया और केवल ‘ध्वै’ धातु से बने हुए ‘ध्यापयितव्यः’ का चिन्ता अर्थ करके राजकुमार का लिखना-पढ़ना छुड़ा दिया। व्याकरण के अनुसार तो उक्त वाक्य के दोनों ही तरह पद होते हैं और दोनों ही शुद्ध हैं, पर यहाँ केवल व्याकरण की ही दरकार न थी। कुछ अनुभव भी होना चाहिए था। पत्र बाँचने वाले में इस अनुभव की कमी होने से उसने राजकुमार का पठन-पाठन छुड़ा दिया। इसका फल यह हुआ कि जब राजा आए और अपने कुमार का पठन-पाठन छूटा हुआ देखा तो उन्होंने उसके कारण की तलाश की। यथार्थ बात मालूम हो जाने पर उन्हें उस अर्धदग्ध-मूर्ख पत्र बाँचने वाले पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने इस मूर्खता की उसे बड़ी कड़ी सजा दी। इस कथा से भव्यजनों को यह शिक्षा लेनी चाहिए कि वे कभी ऐसा प्रमाद न करें, जिससे कि अपने कार्य को किसी भी तरह की हानि पहुँचे। जिस प्रकार गुणहीन औषधि से कोई लाभ नहीं होता, वह शरीर के किसी रोग को नहीं मिटा सकती, उसी तरह अक्षर रहित शास्त्र या मन्त्र वगैरह भी लाभ नहीं पहुँचा सकते। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे सदा शुद्ध रीति से शास्त्राभ्यास करें— उसमें किसी तरह का प्रमाद न करें, जिससे कि हानि होने की संभावना है ॥४-११॥

९४. अर्थहीनाख्यानम्

सर्वकल्याणकेषूच्चै-श्चर्चितांस्त्रिदशादिभिः। नत्वा जिनेश्वरान्वक्ष्ये अर्थहीनकथानकम् ॥१॥
 विनीतविषये रम्ये पुरेऽयोध्याभिधानके। राजाऽभूद्वसुपालाख्यो वसुमत्यभिधा प्रिया ॥२॥
 तयोः पुत्रः समुत्पन्नो वसुमित्रो विचक्षणः। तस्योपाध्यायको जातो गर्गनामा गुणोज्ज्वलः ॥३॥
 अवन्तिविषये पुर्यामुज्जयिन्यां तथाभवत्। वीरदत्तो महान्राजा वीरदत्ता सुवल्लभा ॥४॥
 अयं श्रीवीरदत्ताख्यो वसुपालस्य भूभुजः। मानभङ्गं करोत्युच्चैस्ततः स वसुपालकः ॥५॥
 उज्जयिन्यां समागत्य तस्योपरि महाक्रुधा। गतेषु दिवसेषूच्चैर्वसुमत्यादिकान्प्रति ॥६॥
 पुत्रोऽध्यापयितव्योसौ वसुमित्रोतिसादरम्। शालिभक्तं मसिस्पृक्तं सर्पिर्युक्तं दिनं प्रति ॥७॥

९४. अर्थहीन वाक्य की कथा

गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण ऐसे पाँच कल्याणों में स्वर्ग के देवों ने आकर जिनकी बड़ी भक्ति से पूजा की, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर अर्थहीन अर्थात् उल्टा अर्थ करने के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती है ॥१॥

वसुपाल अयोध्या के राजा थे। उनकी रानी का नाम वसुमती था। इनके वसुमित्र नाम का एक बुद्धिमान् पुत्र था। वसुपाल ने अपने पुत्र के लिखने-पढ़ने का भार एक गर्ग नाम के विद्वान् पंडित को सौंपकर उज्जैन के राजा वीरदत्त पर चढ़ाई कर दी। कारण वीरदत्त हर समय वसुपाल का मानभंग किया करता था और उनकी प्रजा को भी कष्ट दिया करता था। वसुपाल उज्जैन आकर कुछ दिनों तक शहर का घेरा डाले रहे। इस समय उन्होंने अपनी राज्य-व्यवस्था के सम्बन्ध का एक पत्र अयोध्या भेजा। उसी में अपने पुत्र के बाबत उन्होंने लिखा- ॥२-६॥

“वसुमित्र के पढ़ाने-लिखाने का प्रबन्ध अच्छा करना, कोई त्रुटि न करना और उसके पढ़ाने वाले पंडित जी को खाने-पीने की कोई तकलीफ न हो-उन्हें घी, चावल, दूध-भात वगैरह खाने को दिया करना। पत्र पहुँचा। बाँचने वाले ने उसे ऐसा ही बाँचा। पर श्लोक में ‘मसिस्पृक्तं’ एक शब्द

१. श्लोक में ‘मसिस्पृक्तं’ शब्द है : उससे ग्रन्थकार का क्या मतलब है यह समझ में नहीं आता। पर वह ऐसी जगह प्रयोग किया गया है कि उसे ‘शालिभक्तं’ का विशेषण न किए गति ही नहीं है। आराधना कथाकोश की छन्दोबन्ध भाषा बनाने वाले पंडित बख्तावरमल उक्त श्लोकों की भाषा यों करते हैं-

“सुत वसुमित्र पढ़ाइयो नित्त, गर्गनाम पाठक जो पवित्त।
 ताको भोजन तंदुल घीव, लिखन हेत मसि देव सदीव॥”

पंडित बख्तावरमलजी ने ‘मसिस्पृक्तं’ शब्द का अर्थ किया है-उपाध्याय को लिखने को स्याही देना। यह उन्होंने कैसे ही किया हो, पर उस शब्द में ऐसी कोई शक्ति नहीं जिससे कि यह अर्थ किया जा सके और यदि ग्रन्थकार का भी इसी अर्थ से मतलब हो तो कहना पड़ेगा कि उनकी रचना शक्ति बड़ी ही शिथिल थी। हमारा यह विश्वास केवल इसी डेढ़ श्लोक से ही ऐसा ही हुआ किन्तु इतने बड़े ग्रन्थ में जगह-जगह, श्लोक-श्लोक में